• कविताएं..

ऐसा क्यों...

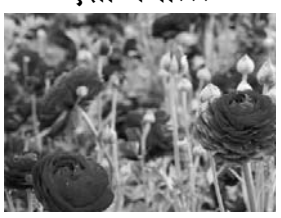

अपार के पार
धूल भरी भारी
दुपहर की हवा
जेठ की लपट
लपट में काया-छाया
मेड़-मेड़ पकड़े
लगता है दूर विशाखा निकल गई है
ऊर्ध्वाधर समुद्र में
तपती देह
पोत में उठती-गिरती
तीन बकरियां साथ
कांख में बच्चा
सिर पर गठरी
मृगमरीचिका के समुद्र में
अपना सब कुछ ले कर
आओ तुम भी उतरो
इस समुद्र के पार
नयी दुनिया में रहने चलो
उतारो तुम भी अपनी नाव
विशाखा वहीं गई है
अस्ति-नास्ति के इस समुद्र पर
अग्नि और जल
दोनों मिल कर बरस रहे हैं
और विशाखा पाल खोल कर
डांड़ संभाले सबको ले कर
पार कर रही है अपार को

■ *दिनेश कुमार शुक्ल*

ऐसा क्यों...

तुम मुस्कुरा दो
चिड़िया मत रो
छोटी-बड़ी किसी भी उम्र की हो
तुम
मत रो अब कोयल, गौरैया तुम
सब
अब एक बार बज उठेगी थाप
मांदर मधुर संगीत निकालेगा ही
पेट में अन्न का टुकड़ा न हो भला
उम्मीद ही तो है साथ
होता यही है आदिवासी का गहना
तुम सजा लेना मांग
होने दो बारिश इस बार
तुम हंस दो फिर से
खरीद दूंगी मैं हार, पायल और मोर पंख
चलो न खेत, साथ में
क्यारियां भर रही है
फैल रहा है वहां धान का सिमटा बीज
तुम मुस्कुरा दो
गुंगु भी हंस रहा है तुम्हें देखकर
शायद।

■ *निवेदिता झा*

•• कहानी/धर्मवीर भारती

गुलकी बन्नो...

गतांक से आगे...

ले! ले! भगवान हैं तो ले!'' और बुआ ने पागलों की तरह दौड़कर नाली में जमा कूड़ा लकड़ी से ठेल दिया। छह इंच मोटी गन्दे पानी की धार धड़-धड़ करती हुई उसकी दुकान पर गिरने लगी. तरोइयां पहले नाली में गिरीं, फिर मूली, खीरे, साग, अदरक उछल-उछलकर दूर जा गिरे. गुलकी आंख फाड़े पागल-सी देखती रही और फिर दीवार पर सर पटककर हृदय-विदारक स्वर में डकराकर रो पड़ी,''अरे मोर बाबू, हमें कहां छोड़ गए! अरे मोरी माई, पैदा होते ही हमें क्यों नहीं मार डाला! अरे धरती मैया, हमें काहे नहीं लील लेती!''

सर खोले बाल बिखेरे छाती कूट-कूटकर वह रो रही थी और तिछत्ते का पिछले पहले नौ दिन का जमा पानी धड़-धड़ गिर रहा था।

बच्चे चुप खड़े थे। अब तक जो हो रहा था, उनकी समझ में आ रहा था. पर आज यह क्या हो गया, यह उनकी समझ में नहीं आ सका। पर वे कुछ बोले नहीं। सिर्फ मटकी उधर गई और नाली में बहता हुआ हरा खीरा निकालने लगी कि मुन्ना ने डांटा, ''खबरदार! जो कुछ चुराया।'' मटकी पीछे हट गई। वे सब किसी अप्रत्याशित भय संवेदना या आशंका से जुड़-बटुरकर खड़े हो गए। सिर्फ मिरवा अलग सर झुकाए खड़ा था. झींसी फिर पड़ने लगी थी और वे एक-एक कर अपने घर चले गए।

दूसरे दिन चौतरा ख़ाली थी. दुकान का बांस उखड़वाकर बुआ ने नांद में गाड़कर उस पर तुरई की लतर चढ़ा दी थी। उस दिन बच्चे आए पर उनकी हिम्मत चौतरे पर जाने की नहीं हुई। जैसे वहां कोई मर गया हो। बिलकुल सुनसान चौतरा था और फिर तो ऐसी झड़ी लगी कि बच्चों का निकलना बन्द। चौथे या पांचवें दिन रात को भयानक वर्षा तो हो ही रही थी, पर बादल भी ऐसे गरज रहे थे कि मुन्ना अपनी खाट से उठकर अपनी मां के पास घुस गया। बिजली चमकते ही जैसे कमरा रोशनी से नाच-नाच उठता था छत पर बूंदों की पटर-पटर कुछ धीमी हुई, थोड़ी हवा भी चली और पेड़ों का हरहर सुनाई पड़ा कि इतने में धड़-धड़-धड़-धड़ाम! भयानक आवाज हुई। मां भी चौंक पड़ी। पर उठी नहीं. मुन्ना आंखें खोले अंधेरे में ताकने लगा। सहसा लगा मुहल्ले में कुछ लोग बातचीत कर रहे हैं घेघा बुआ की आवाज सुनाई पड़ी,''किसका मकान गिर गया है रे।''

''गुलकी का!' किसी का दूरागत उत्तर आया।

''अरे बाप रे! दब गई क्या?''

''नहीं, आज तो मेवा की मां के यहां सोई है!''

मुन्ना लेटा था और उसके ऊपर अंधेरे में यह सवाल-जवाब इधर-से-उधर और उधर-से-इधर आ रहे थे। वह फिर कांप उठा, मां के पास घुस गया और सोते-सोते उसने साफ सुना-कुबड़ी फिर उसी तरह रो रही है, गला फाड़कर रो रही है! कौन जाने मुन्ना के ही आंगन में बैठकर रो रही हो! नींद में वह स्वर कभी दूर कभी पास आता हुआ लग रहा है जैसे कुबड़ी मुहल्ले के हर आंगन में जाकर रो रही है पर कोई सुन नहीं रहा है, सिवा मुन्ना के।

उस दिन जब घेघा बुआ के धैर्य का बांध टूट गया और नई–नई गालियों से विभूषित अपनी पहली इलेक्शन स्पीच देने ज्यों ही चौतरे पर अवतरित हुई कि उन्हें डाकिया आता हुआ दिखाई पड़ा। वह अचकचाकर रुक गई।

डाकिए के हाथ में एक पोस्ट कार्ड था और वह गुलकी को ढूंढ़ रहा था। बुआ ने लपक कर पोस्टकार्ड लिया, एक सांस में पढ़ गईं। उनकी आंखें मारे अचरज के फैल गईं, और डाकिए को यह बताकर कि गुलकी सत्ती साबुनवाली के ओसारे में रहती है...

बच्चों के मन में कोई बात इतनी गहरी लकीर बनाती कि उधर से उनका ध्यान हटे ही नहीं। सामने गुलकी थी तो वह एक समस्या थी, पर उसकी दुकान हट गई, फिर वह जाकर साबुन वाली सत्ती के गलियारे में सोने लगी और दो-चार घरों से मांग-मूंगकर खाने लगी, उस गली में दिखती ही नहीं थी. बच्चे भी दूसरे कामों में व्यस्त हो गए। अब जाड़े आ रहे थे। उनका जमावड़ा सुबह न होकर तीसरे पहर होता था। जमा होने के बाद जूलूस निकलता था। और जिस जोशीले नारे से गली गूंज उठती थी वह थ,'घेघा बुआ को वोट दो।'' पिछले दिनों म्युनिसिपैलिटी का चुनाव हुआ था और उसी में बच्चों ने यह नारा सीखा था। वैसे कभी-कभी बच्चों में दो पार्टियां भी होती थीं, पर दोनों को घेघा बुआ से अच्छा उम्मीदवार कोई नहीं मिलता था अतः दोनों गला फाड़-फाड़कर उनके ही लिए वोट मांगती थीं।

उस दिन जब घेघा बुआ के धैर्य का बांध टूट गया और नई-नई गालियों से विभूषित अपनी पहली इलेक्शन स्पीच देने ज्यों ही चौतरे पर अवतरित हुई कि उन्हें डाकिया आता हुआ दिखाई पड़ा। वह अचकचाकर रुक गईं। डाकिए के हाथ में एक पोस्ट कार्ड था और वह गुलकी को ढूंढ़ रहा था। बुआ ने लपक कर पोस्टकार्ड लिया, एक सांस में पढ़ गईं. उनकी आंखें मारे अचरज के फैल गईं, और डाकिए को यह बताकर कि गुलकी सत्ती साबुनवाली के ओसारे में रहती है, वे झट से दौड़ी-दौड़ी निरमल की मां ड्राइवर की पत्नी के यहां गईं. बड़ी देर तक दोनों में सलाह-मशविरा होता रहा और अन्त में बुआ आईं और उन्होंने मेवा को भेजा,''जा गुलकी को बुलाय ला!''

पर जब मेवा लौटा तो उसके साथ गुलकी नहीं वरन् सत्ती साबुनवाली थी और सदा की भांति इस समय भी उसकी कमर से वह काले बेंट का चाकू लटक रहा था, जिससे वह साबुन की टिक्की काटकर दुकानदारों को देती थी. उसने आते ही भौं सिकोड़कर बुआ को देखा और कड़े स्वर में बोली,''क्यों बुलाया है गुलकी को? तुम्हारा दस रुपए किराया बाकी था, तुमने पन्द्रह रुपए का सौदा उजाड़ दिया! अब क्या काम है!''

''अरे राम! राम! कैसा किराया बेटी! अन्दर जाओ-अन्दर जाओ!' बुआ के स्वर में असाधारण मुलायमियत थी. सत्ती के अन्दर जाते ही बुआ ने फटाक् से किवाड़ा बन्द कर लिए. बच्चों का कौतूहल बहुत बढ़ गया था। बुआ के चौके में एक झंझरी थी। सब बच्चे वहां पहुंचे और आंख लगाकर कनपटियों पर दोनों हथेलियां रखकर घण्टीवाला बाइसकोप देखने की मुद्रा में खड़े हो गए।

अन्दर सत्ती गरज रही थी,''बुलाया है तो बुलाने दो। क्यों जाए गुलकी? अब बड़ा खयाल आया है। इसलिए की उसकी रखैल को बच्चा हुआ है जो जाके गुलकी झाड़ू-बुहारू करे, खाना बनावे, बच्चा खिलावे, और वह मरद का बच्चा गुलकी की आंख के आगे रखैल के साथ गुलछर्रे उड़ावे!''

निरमल की मां बोलीं,''अपनी बिटिया, पर गुजर तो अपने आदमी के साथ करैगी न! जब उसकी पत्नी आई है तो गुलकी को जाना चाहिए. और मरद तो मरद. एक रखैल छोड़ दुई-दुई रखैल रख ले तो औरत उसे छोड़ देगी? राम! राम!''

''नहीं, छोड़ नहीं देगी तो जाय कै लात खाएगी?'' सत्ती बोली।

''अरे बेटा!'' बुआ बोलीं,''भगवान रहें न? तौन मथुरापुरी में कुब्जा दासी के लात मारिन तो ओकर कूबर सीधा हुई गवा। पती तो भगवान हैं बिटिया। ओका जाय देव!''

''हां-हां, बड़ी हितू न बनिए! उसके आदमी से आप लोग मुफ्त में गुलकी का मकान झटकना चाहती हैं। मैं सब समझती हूं।''

निरमल की मां का चेहरा जर्द पड़ गया। पर बुआ ने ऐसी कच्ची गोली नहीं खेली थी। वे डपटकर बोलीं,''खबरदार जो कच्ची जबान निकाल्यो! तुम्हारा चरित्तर कौन नै जानता! ओही छोकरा मानिक...''

''जबान खींच लूंगी,'' सत्ती गला फाड़कर चीख़ी,''जो आगे एक हरूफ कहा.'' और उसका हाथ अपने चाकू पर गया-

''अरे! अरे! अरे!'' बुआ सहमकर दस क़दम पीछे हट गईं,''तो का खून करबो का, कतल करबो का?''

सत्ती जैसे आई थी वैसे ही चली गई।

तीसरे दिन बच्चों ने तय किया कि होरी बाबू के कुएं पर चलकर बर्रे पकड़ी जाएं। उन दिनों उनका जहर शान्त रहता है, बच्चे उन्हें पकड़कर उनका छोटा-सा काला डंक निकाल लेते और फिर डोरी में बांधकर उन्हें उड़ाते हुए घूमते. मेवा, निरमल और मुन्ना एक-एक बर्रे उड़ाते हुए जब गली में पहुंचे तो देखा बुआ के चौतरे पर टीन की कुरसी डाले कोई आदमी बैठा है। उसकी अजब शक्ल थी। कान पर बड़े-बड़े बाल, मिचमिची आंखें, मोछा और तेल से चुचुआते हुए बाल। कमीज और धोती पर पुराना बदरंग बूट।

-जारी

• शायरी...

तसवीर तेरी दिल मेरा बहला न सकेगी
ये तेरी तरह मुझ से तो शर्मा न सकेगी।
मैं बात करूंगा तो ये खामोश रहेगी
सीने से लगा लूंगा तो ये कुछ न कहेगी
आराम वो क्या देगी जो तड़पा न सकेगी।

◆ ◆ ◆

ये आंखें हैं ठहरी हुई चंचल वो निगाहें
ये हाथ हैं सहमे हुए और मस्त वो बाहें
पर्छाईं तो इंसान के काम आ न सकेगी।
इन होंठों को फ़ैय्याज़ मैं कुछ दे न सकूंगा
इस जुल्फ़ को मैं हाथ में भी ले न सकूंगा
उलझी हुई रातों को ये सुलझा न सकेगी।

-फ़ैयाज़ हाशमी

◆ ◆ ◆

बेवफ़ाई भी उसी का था चलन फिर किसीसे भी शिकायत ना हुई
वक्त रूठा रहा बच्चे की तरह राह में कोई खिलौना ना मिला
दोस्ती भी तो निभाई ना गई दुश्मनी में भी अदावत ना हुई

-निदा फ़ाज़ली

• हर एक बात तेरी...

हर एक बात तेरी बे–सबात कितनी है
पलटना बात को दम भर में बात कितनी है
अभी तो शाम हुइ है अभी तो आए हो
अभी से पूछ रहे हो के रात कितनी है
वो सुनते सुनते जो घबराए हाल–ए–दिल बोले
बयान कितनी हुई वारदात कितनी है
तेरे शहीद को दूल्हा बना हुआ देखा
रवां जनाज़े के पीछे बरात कितनी है

–'बेख़ुद' देहलवी